International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2016; Page No. 44-45

यातनाओं का सफर : 'जूठन'

रितु गुप्ता

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जी. एम. एन. (पी.जी.) कॉलेज, अम्बाला छावनी, पंजाब, भारत।

प्रस्तावना

आमतौर पर आत्मकथा लिखना 'नोस्टेल्जिया' का अनुभव होता है। बीते दिनों की याद में दहकना होता है। आत्मकथा की पहली शर्त 'स्व' से दूर खड़े होकर निस्संग भाव में खुद को देखना होता है। अपने बारे में बयान करना होता है। परन्तु यह एक 'आयडियल' स्थिति है। खुद से खुद को अलग करना मुश्किल है।

वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' भी समाज द्वारा बनाई रूढ़ियों को तोड़कर स्वयं अपना मार्ग प्रशस्त करने की एकान्त यात्रा है। इसका शीर्षक 'जूठन' प्रतीकात्मक नहीं वरन वास्तविक है। इसके पीछे 'चूहड़ा' जाति की वस्तु–स्थिति छुपी है। जूठन सिर्फ भोजन की नहीं? वरन कपड़ों की भी है। त्यागियों के बच्चों की उतरन पहन–पहन कर बीता बचपन है।..... साफ–सुथरे कपड़े पहनकर कक्षा में जाओ तो साथ के लड़के कहते – "अबे चूहड़ों नए कपड़े पहन कर आया है। मैले कपड़े–पुराने कपड़े पहनकर स्कूल जाओ तो कहते – अबे चूहड़े से दूर हट बदबू आ रही है।"[1] अपने पिता छोटन की संतान वाल्मीकि भाईयों में सबसे छोटे हैं, अपने बचपन के दिनों को याद कर रहे हैं। वह माहौल जो बचपन को दुलारता सहलाता है, उसके विकास में सहायक होता है, उसका यहाँ पूरी तरह अभाव है। यहाँ बचपन का अर्थ है – भूख से जूझना और इंसान की तरह जीने के अर्थ को खोजते रहना। जब हम कहते हैं कि दलित लेखन आक्रोश और विद्रोह का लेखन है। वैसा लेखन अगर आ रहा है तो उसके पीछे का इतिहास जानने की आवश्यकता है। "सदियों की गुलामी का एहसास जब आज हो रहा है तो उसकी प्रतिक्रिया मीठी वाणी से संभव नहीं हो सकती।"[2] दलित साहित्य का लक्ष्य सबको समान हक, समान शिक्षा, पेशा चुनने का समान अवसर और अधिकार दिलाकर एक जाति विहीन समाज का निर्माण करना है।[3]

'जूठन' आत्मकथा लिखने से पहले का लेखक का जो द्वन्द्व है उसके संदर्भ में वह खुद लिखते हैं – "अपनी व्यथा – कथा को शब्द–बद्ध करने का विचार काफी समय से मन में था लेकिन प्रयास करने के बाद भी सफलता नहीं मिल पा रही थी। कितनी ही बार लिखना शुरू किया और हर बार लिखे गए पन्ने फाड़ दिए..... तमाम कष्टों, यातनाओं को एक बार फिर जीना पड़ा, उस दौरान गहरी मानसिक यन्त्रणाएँ मैंने भोगी।"[4]

दलित आत्मकथा इसलिए बेबाक आत्मकथा होती है। लाग–लपेट के सहारे इसे कलात्मक के आवरण में लपेट कर अविश्वसनीय नहीं बनाया जाता।[5] वाल्मीकि की 'जूठन' में जो जीवन के अनुभव है उसको ब्यान करते हुए वह कहते हैं कि, "अपने बैठने की जगह तक आते–आते चटाई छोटी पड़ जाती थी। कभी–कभी तो एकदम पीछे के दरवाजे के पास बैठना पड़ता था।"[6] जब भी आदर्श गुरू की कोई बात करता है तो उसे ऐसे शिक्षक की याद आती है जो माँ–बहन की गालियाँ सुनाते थे और झाड़ू लगवाते थे। जब पिता जी ने देख लिया तो लेखक ने सारी आप–बीती सुनाई तो पिता जी ने जो गुस्सा किया था – "कौन सा मास्टर है वो द्रोणाचार्य की औलाद जो मेरे लड़के से झाड़ू लगवावे हैं।"[7] एक बार स्कूल में मास्टर साहब द्रोणाचार्य पाठ पढ़ा रहे थे तब मास्टर साहब बिल्कुल रूआँसा हो कर बता रहे थे कि द्रोणाचार्य ने भूख से तड़पते अश्वत्थामा को आटा पानी में घोलकर पिलाया था। दूध की जगह पूरी कक्षा द्रोण की गरीबी सुनकर हाय–हाय कर उठी थी। तब लेखक ने कहा कि –अश्वत्थामा को तो दूध की जगह आटे का घोल पिलाया गया और हमें चावल का मांड। फिर किसी भी महाकाव्य में हमारा जिक्र क्यों नहीं आया? किसी महाकाव्य ने हमारे जीवन पर एक भी शब्द क्यों नहीं लिखा?"[8]

ओमप्रकाश जी ने हिन्दू की क्रूरता बचपन से देखी है। सहन की है। जातीय श्रेष्ठताभाव अभिमान बनकर कमजोर को ही क्यों मारता है? 'जूठन' की विशेषता है लोकतांत्रिक या जनवादी सोच–विचार के काफी करीब होना और मार्क्सवाद के प्रति झुकाव। आत्मकथा में वाल्मीकि का मौन व मुखर आक्रोश व प्रतिरोध बचपन से ही अभिव्यक्त होता चलता है। दूसरे हर मार्मिक प्रसंग के बाद पाठक को सोचने–विचारने के लिए सूत्र देते हैं कि इन दारूण परिस्थितियों का जिम्मेदार कौन?

निम्न दलित जातियों के परिवेश, घर, परिवार के टूटन, बिखराव, धार्मिक टूटन, सामाजिक व सांस्कृतिक सामंतों द्वारा शारीरिक व आर्थिक शोषण, अशिक्षा, स्कूल, कॉलेज, अप्राकृतिक सम्बन्ध आदि कितने ही विषय इस व्यथा –कथा में बिखरे पड़े हैं, जिसमें लेखक की जागरूकता का पता चलता है।

'जूठन' में प्रेम की सारी परिभाषाएं एवं उसके अर्थों पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। दो युवा मनों में उपजे प्रेम के टूटते तार ने नस–नस में समायी जाति– व्यवस्था को बड़ी तल्खी से उजागर किया है। प्रेमी–प्रेमिका के बीच जाति आते ही सब कुछ बिखर जाता है।

मरे हुए पशुओं की खाल निकालने का कार्य भी चूहड़ा के जिम्मे था। इस काम के सिर्फ 10 से 15 रूप्ए मिलते थे। बड़ी भाभी ने कहा – "इनसे न कराओ भूखे रह लेंगे, इन्हें गंदगी में न घसीटो। भाभी के ये शब्द आज भी लेखक के लिए अंधेरे में रोशनी बनकर चमकते हैं पर दुख यह है कि आज भी लाखों लोग ऐसी घिनौनी जिंदगी जीने को मजबूर हैं।"[9]

सांप्रदायिक एवं जातिवादी ताकतें अपने षडयन्त्रों में सफल हो गयी थी। लेखक स्थिति की विवेचना करते हुए कहता है – "दलितों व गैर दलितों के बीच घृणा की खाई लगातार बढ़ती जा रही है जिसे पाटने का इरादा कहीं दिखाई नहीं पड़ रहा था। समाज में सब अपनी–अपनी रोटी सेंकने में लगे हैं और वोट की राजनीति ने मानवीय मूल्य खत्म कर दिए हैं।"[10]

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने अपना सरनेम तो नहीं बदला बल्कि 'वाल्मीकि' सरनेम के साथ अपने जाति बोध की आत्म–स्वीकृति का लंबा सफर तय करके दलित अस्मिता की पहचान कराने में अपनी सार्थकता जरूर सिद्ध की।

संदर्भ सूची :–

1 वाल्मीकि ओमप्रकाश– जूठन, पृष्ठ–13।
2 वाल्मीकि ओमप्रकाश – दलित साहित्य का सौन्दर्य शस्त्र; पृष्ठ–23।

3 गुप्ता रमणिका – दलित चेतना : साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार; पृष्ठ–65।
4 जूठन की दलित आत्मकथाभिव्यक्ति (लेख) अपेक्षा–विशेषांक, दिल्ली।
5 कथाक्रम जनवरी–मार्च 2005 : पृष्ठ–63।
6 वाल्मीकि ओमप्रकाश –जूठन; पृष्ठ–13।
7 वही; पृष्ठ–34।
8 वही; पृष्ठ–34।
9 वाल्मीकि ओमप्रकाश –जूठन, पृष्ठ–64।
10 वही; पृष्ठ–124।